हिमाचली देव–परंपराओं में संगीत का स्थान

ठाकुर सेन[1]

भारतीय समाज एक धार्मिक प्रभावित समाज है। यहाँ सभी धर्मों के लोग अपने–अपने धार्मिक विश्वासों एवं परंपराओं को साथ लेकर चलते हैं। सभी लोग अपनी–अपनी परम्पराओं का स्वच्छता एवं दृढ़ता के साथ निर्वहन करते हैं क्योंकि उन परम्पराओं को सर्वसम्मति से लोक समाज ने स्वीकार किया होता है। ऐसा न करने पर लोकलाज का ड़र भी रहता है, अतः परम्परावादी व्यक्ति लोकमत को अहम मानता है और वह सामाजिक रीति–रिवाजों को ज्यों–का–त्यों मानता चलता है और उसमें रहकर और उनका पालन करके आन्नद का अनुभव करता है। उससे हटकर जीने में उसे मानसिक तनाव का अनुभव होता है। अतः हम यह कहें कि धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराऐं मानव–मूल्यों की प्रमुख धारा है, जो वर्तमान जीवन पर हावी रहती हैं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन्ही धार्मिक और सामाजिक परंपराओं के मध्य हमारा देव–विश्वास छिपा होता है। व्यक्ति चाहे जिस भी देश, समाज, धर्म, अथवा लिंग का हो, उसका किसी–न–किसी अलौकिक शक्ति पर अटूट विश्वास होता है।

भारतवर्ष की बात की जाए यहाँ पर अलौकिक शक्तियों पर विश्वास की परंपरा ऋग्वैदिक काल से वर्तमान समय तक निरंतर प्रवाहित हो रही है। प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने विश्वास के अनुसार इन अलौकिक शक्तियों से मंगल जीवन की कामना करते हैं। इसके लिए वे विभिन्न माध्यमों से अपने–आराध्य देवों से प्रार्थना करते हैं और उन्हें प्रसन्न करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाते हैं। इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम कह सकते हैं कि इन विभिन्न शक्तियों को प्रसन्न करने लिए ही सर्वप्रथम संगीत का सहारा लिया गया। ऋग्वैदिक काल में गायन वादन के माध्यम से देवताओं की आराधना की जाती थी। कोई भी धार्मिक आयोजन बिना संगीत के पूर्ण न ही हाता था और न ही पूर्ण समझा जाता था। यही परंपरा भातरवर्ष में आज भी प्रचलित है। अपने आराध्य देवों को प्रसन्न करने के लिए संगीत में गायन–वादन शैलियों का विकास हुआ। देवी–देवताओं की पूजा में संगीत गायन व वाद्य–वादन की विशिष्ट परंपरा विद्यमान है।

भारतीय समाज में तो प्रत्येक स्वर का एक देवता निश्चित किया गया है, जिसे उस स्वर का ऋषि कहा गया है। हिमाचल प्रदेश की संस्कृति तो पुरातन समय से ही देवी–देवताओं के इर्द–गिर्द घूमती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक संस्कारों तथा सामाजिक–परंपराओं इनकी भूमिका रहती है। खेत में हल चलाना हो, बीज बोना हो, फ़सल काटनी हो, गृह निर्माण करना हो, बच्चे का नामकरण करना हो या शादी–ब्याह करवाना हो, प्रत्येक अवसर पर देवता की उपस्थिति अनिवार्य होती है। देव आस्था के सहारे ही लोग जीवन यापन में आने वाली परेशानियों से जूझते हैं। यहाँ घर का गृह देवता, गाँव का ग्राम देवता होता है। ये सब लोगों के संगी हैं, साथी हैं, पथ–प्रदर्शक हैं, सबल हैं, सहारा हैं एवं सर्वोपरी भगवान हैं। इन्हीं देव–परंपराओं के निर्वहन के लिए विभिन्न नियम बनाए गये हैं, जिसमें संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। इन देवताओं की मेलों, उत्सवों, यात्राओं, देवताओं की विभिन्न सामाजिक परंपराओ के निर्वहन और पूजा में संगीत की उपस्थिति अनिवार्य होती है। देवताओं के मन्दिरों में प्रातः पूजा के समय शंखों के सुन्दर नाद तथा घण्टियों की करतल ध्वनि से ही लोगों की दिनचर्या प्रारम्भ होती है। शंख के बारे में कहा जाता है–''शंख बाजे राक्षस भाजे'', अर्थात शंख के नाद से असुर भाग जाते हैं।

जनजातीय क्षेत्र किन्नौर की बात की जाए तो यहाँ बड़े देवताओं के अठारह बजन्तरी होते हैं। देवता की क्रिया–कलापों में जो वाद्य बजाए जाते हैं उनमें ढ़ोल, गुब्जाल, करनाल, रणसिंगे आदि प्रमुख हैं। देवता की पालकी को जब एक गाँव या स्थान से दूसरे स्थान ले जाया जाता है, तो लोकवाद्य ही देवरथ के आगे–आगे बजाए जाते हैं। किन्नौर में देव पूजन में वाद्य वादन को अलग–अलग समय में अलग–अलग नाम दिए गये हैं, रात को आरती के समय 'बेल' बजाते है, ब्रह्ममुहूर्त में 'नमत' बजाते हैं। चम्बा, मण्डी तथा बिलासपुर में नगाड़े और शहनाई वादन से प्रातः–सॉय पूजा को नौवत कहते हैं। सिरमौर में देवताओं की दिन में तीन

1 पीएच0–डी0 शोध–छात्र, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–5

बार पूजा की जाती है। प्रातः काल जब देवस्तुति में वाद्यायन्त्र बजाए जाते हैं, उसे पूजा कहते हैं। सांझ ढ़ले 'दियोल' तथा रात्री ग्यारह बजे के आसपास 'नबद' बजाई जाती है। देवताओं की पूजा में इन तीनों कालों में 'वाम' (बड़ा नगारा) मुख्य रूप से बजाया जाता है। कुल्लू में दवस्तुति में बजाई जाने बाली क्रिया को 'जूहण' कहते हैं। किसी अन्य देवता के स्वागत में वाघ यन्त्र बजाना हो तो उस वाद्य–क्रिया को 'हुआरा' कहा जाता है। 'हुआरे' में जगाऊण, पतियाऊण नचाऊण, देउखड़ी, व्याहुल, बशाऊण तथा खड़यायत की धुन मुख्य रूप से बजाई जाती है। देव यात्रा के समय जहाँ–जहाँ भी अन्य देवताओं के मन्दिर तथा स्थान आते हैं, वहाँ भी उनकी स्तुति में भी हुआरा बजाने की परम्परा है। कुल्लू जनपद में कुछ लोकवाद्या केवल देवपूजन में ही बजाए जाते हैं। इनमें ढ़ौंस, पंचमुखी, काहल, भाणा, छंछाला आदि वाद्यों का वादन देव पूजन में ही होता है।

कुल्लू जनपद में देवता के प्रतिनिधि 'गुर' में देवता प्रवेश के लिए विशेष ताल का वादन किया जाता है, जो कि निम्न प्रकार से है–

1	2	3	4	5	6	7	8
गे	णीं	गे	णीं	गे	णीं	ग	ण
X				2			

कुल्लू जनपद की एक और ताल जिसका प्रयोग किसी देवता के स्वागत में किया जाता है–

1	2	3	4	5	6	7	8
धिन	तिता	धिना	नाना	धिना	नाना	धिण	तिता
X				2			

इन दोनों तालों में मात्राओं की संख्या 8–8 है। शास्त्रीय संगीत के अनुसार 8 मात्राओं का कहरवा ताल है। इस प्रकार ये दोनों कुल्लूवी देव–परंपराओं के ताल कहरवा ताल के समान हैं। इन दोनों तालों को पहाड़ी कहरवा भी कहा जाता है।

हिमाचल देव परम्पराओं में गायन की अपेक्षा वाद्या वादन का अधिक महत्त्व रहता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देव–परंपराऐं ताल प्रमुख हैं। देवी–देवता की प्रत्येक विधा के निर्वहन के लिए अनेकों तालों का निर्माण लोक समाज ने अपने–अपने तरीके से किया है। प्रत्येक ताल का हर विधा में अपना ही विशेष महत्त्व रहता है। शास्त्रीय संगीत की तरह ही देव–परम्पराओं में भी ताल पूर्णतः नियमबद्ध होते हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण हमें कुल्लू जनपद के 'हुआरा' ताल से मिलता है, इस ताल का प्रयोग केवल देवता के स्वागत के लिए ही किया जाता है अन्यत्र इस ताल का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

देव–परंपराऐं यद्यपि ताल प्रधान हैं, परन्तु इनमें गायन का भी अपना महत्त्व है। देव गाथाओं तथा लोकगीतों द्वारा देवता का स्तुति गान किया जाता है। लोकवाद्यों के साथ देवगाथाओं को 'गुर' (देवता का प्रतिनिधि) सस्वर सुनाते हैं। ये देवगाथाऐं 'भार्था' कहलाती हैं। भार्था को देवता का 'गुर' फागुन या चेत्र मास की संक्रांति तथा जन्मदिन को सुनाता है। इसमें एक निश्चित स्वर रहता है। षड़ज, मध्यम और पंचम स्वरों पर ही पूरी देवगाथा सुनाई जाती है, जो वैदिक संगीत की तरह है। वैदिक संगीत में सामिक, आर्चिक व गाथिक स्वरों के गायन की परम्परा रही है तथा ऋचाओं का गायन अवरोहात्मक होता है। देव–परम्पराओं का अधिकांश गान भी वैदिक संगीत की तरह ही अवरोहात्मक होता है।

संगीत की तीसरी विधा, नृत्य का प्रयोग भी देव–परम्पराओं में होता है। देवता नृत्य के भी शौकीन होते हैं। देवी–देवताओं की पालकियां समय–समय पर नृत्य भी करती हैं। देवनृत्य विशेष अवसर पर ही होता है तथा नृत्य के लिए विशेष ताल का ही वादन किया जाता है।

शास्त्रीय संगीत में घरानों को बहुत अधिक महत्त्वता दी जाती है, उसी प्रकार देव–परंपराओं में भी घराना परम्परा स्पष्ट दृश्टिगोचर होती है। देवताओं के गाथा गायक तथा वाद्य वादक विशेष वर्ग के होते हैं और ये पीढ़ी–दर–पीढ़ी देव–सेवा करते रहते

हैं। देव परम्पराओं मे जितना भी संगीत का प्रयोग किया जाता है उसमें इन विशेष वर्ग के लोग ही पारंगत होते हैं, समाज का अधिकांश वर्ग इससे अनजान रहता है। क्योंकि इन परंपराओं की सूक्ष्मता की जानकारी वे अपने ही वंश के लोगों को देते हैं, क्योंकि यह उनकी अजीविका का प्रश्न होता है। इसलिए देव–परंपराओं की सांगीतिक परंपराऐं इन लोगों के इर्द–गिर्द घूमती हैं, क्योंकि वाद्य निर्माण से लेकर वादन और गेय गाथाओं की सांगीतिक जानकारी केवल इन लोगों के पास होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिमाचली देव–परंपराओं संगीत आत्मा की तरह है। देव–परंपराऐं संगीत के चारों ओर घूमती हैं। संगीत के बिना देव–परंपराऐं एक भी कदम आगे नहीं चल सकती, क्योंकि इनमें संगीत की उपस्थिति हर क्षण रहती है। यदि संगीत को देव–परंपराओं से निकाला जाए तो देवता और इनकी परंपराऐं दोनों मौन हो जाएगी।